रीतिमुक्त काव्य की अंतर्वस्तु का पुर्नमूल्यांकन

मनीष कुमार
शोधार्थी, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सारांश:-

रीतिकाल जिसकी समय सीमा सन् 1643 से 1843 है, इन दो शताब्दियों के हिंदी काव्य में ईश्वर, राजपाट और आलौकिक स्त्रियों के कल्पनिक वर्णन के सापेक्ष स्थूल और सूक्ष्म दोनों स्तर का स्त्री वर्णन मिलता है। देखते है कि यह युग भाषा और कला की दृष्टि से सम्मृद्ध है एवं साहित्य और संगीत एकाकर रूप में दिखाई देते हैं। साहित्य और संगीत की साधना करते हुए नवीन रागों और शैलियों का इजात करते हैं , जिसके कारण हम कह सकते हैं कि विभिन्न कलाओं और साहित्य का समन्वय इस युग में दिखाई देता है। इस युग को रीतिबद्ध ,रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त काव्यधाराओं ने गतिशीलता प्रदान की है। रीतिमुक्त काव्यधारा अन्य दो काव्यधाराओं से प्रभाव ग्रहण करते हुए , काव्य में नवीनता को समाहित करती है। 'निज प्रेम' को काव्य का प्रेरक तत्व बनाते हुए प्रेम का स्वरुप स्पष्ट करते हैं।पूर्ववर्ती काव्यधाराओं की प्रेम संबंधी और स्त्री सबंधित रूढ़ियों को तोड़ते हुए, नवीन अवधारणाओं को काव्य के माध्यम से अभिव्यक्त करते है। कालानुसार प्रत्येक युग अपनी नवीन व्याख्या करता है । इस शोध आलेख में आंशिक तौर पर नवीन तथ्यों को प्रस्तुत एवं व्याख्या प्रदान करने का प्रयास किया गया है।

बीजशब्द:- रीति,रीतिकाव्य, रीतिकाल , रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध, रीतिमुक्त, अन्तर्वस्तु, पुनर्मूल्यांकन, छंद, स्वछंद और रूढ़ियां

रीतिमुक्त रीतिकाल की काव्यधारा है। अनेक विद्वानों ने इसके अलग-अलग नामकरण किए हैं। इस काव्यधारा को रीतिमुक्त, मुक्तरीति और स्वच्छंद काव्यधारा आदि संज्ञाओं से जाना जाता है। साधारण शब्दों में कहें तो ''रीतिमुक्त का सीधा अर्थ यही है कि यह धारा रीति-परंपरा के साहित्यिक बंधनों और रूढ़ियों से मुक्त है।''[1] रीतिमुक्त, मुक्तरीति, स्वच्छंद या प्रेममूलक काव्य नामकरण देखने पर इस धारा की विशिष्ट पहचान बनती है। रीतिमुक्त बंधी-बधाई काव्य पद्धति से भिन्नता को प्रदर्शित करता है। 'रीति' से मुक्त होते हुए भी इसमें 'रीति' का प्रभाव था। दरबारी परिवेश में रचे जाने के बाद भी दरबारी घुटन और रूढ़ी से मुक्त हैं इस धारा के प्रमुख कवि घनानंद, बोधा, आलम ठाकुर और द्विजदेव है। इनमें 'रीति' का प्रभाव, रीति से मुक्ति और दरबार एवं लोक चित्रण देखने को मिलता है।

रीतिकालीन कवियों की भांति इनमें भी 'प्रेम' और शृंगार है लेकिन, इनका प्रेम पोथी आधारित नहीं हैं, बल्कि स्वाभाविक और प्रेम की निजी व्यथा है। काव्यशास्त्र के नियमों को आधार बनाने की अपेक्षा स्वच्छन्दता को महत्व देते थे। इसलिए ठाकुर ने लिखा था-

"सीख लीनो मीन मृग खंजन कमल नयन,
सीख लीनो जस और प्रताप को कहानो है।

डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच

लोगन कबित्त कीबो खेल करि जानो है।''[2]

श्रृंगार की अधिकता होने के बावजूद भी कहीं अश्लीलता नहीं है। श्रृंगार का वियोग पक्ष ज्यादा चित्रित हुआ है। जिसके कारण प्रेम का उज्ज्वल पक्ष अंकित हुआ है। ऐसा इसलिए भी है कि ''इन कवियों ने रीतिकाव्य परम्परा के दरबारी कवियों की भांति रूढ़िगत, सामन्ती जीवन के विलास को अपने काव्य का लक्ष्य नहीं बनाया।''[3] जिसके कारण इन्द्रिय आनन्द की अपेक्षा मन को भाव-विभोर करने वाले दृश्य अधिक है।

इस धारा के कवियों ने निजी प्रेम को आधार बनाकर काव्य रचना की। फिर भी इस काव्य का प्रभाव अत्यधिक क्यों है? इनका निज प्रेम, प्रेम की परिभाषा गढ़ता नजर आता है। इनका काव्य प्रेम मार्ग की सच्चाई बनाता है, क्योंकि ''उनका प्रेम बरसाती नदी की तरह अस्वाभाविक नहीं था, उसमें तो कभी न सूखने वाली स्नेह की अजस्त्र धारा प्रवाहित होती रहती थी। उनमें प्रेम की लोकोन्मुखता और गम्भीरता मिलती है।''[4] इसलिए युगों की सीमाओं का अतिक्रमण करके इनका प्रेम वर्तमान पीढ़ी को 'प्रेम' का तात्पर्य स्पष्ट करता है।

रीतिमुक्त धारा के कवियों में घनानन्द अग्रणीय है। सुजान नाम दरबारी नर्तकी से प्रेम, क्या उस समाज से विद्रोह नहीं है? जहाँ प्रेम निषेध हो! प्रेम किया भी तो नर्तकी से। जो दरबार में आनंद का माहौल बनाती होगी ओर लोक में त्याज्य मानी जाती होगी। उससे प्रेम किया भी तो उच्च स्तर का, जहाँ प्रेमिका और ईश्वर अभेद होते प्रतीत होने लगते है क्योंकि, ''घनानंद में अनुभूति की गम्भीरता इतनी अधिक है कि कवि का सम्बन्ध सशरीर प्रेम से हटकर परमसत्ता के साथ प्रतीत होने लगता है-

मन जैसे कछू तुम्हें चाहत है, सो बखानियों कैसे 'सुजान' ही हौं।
इन प्राननि एक सदा गति रावरे, बावरे लौ लगिये नित लौं।
बुधि औ सुधि नैननि बैननि में, करि बास निरन्तर अन्तर गौ।
उधरो जग छाय रहे घन आनन्द, चातिक लौ तकियै अब तौ।।''[5]

यह सूफी प्रभाव देता है परन्तु वहाँ प्रेम का लक्ष्य अलौकिक प्रभाव देना ही होता है। परन्तु घनानंद का प्रेम शुद्ध लौकिक है अंत में प्रेम की गम्भीरता लौकिक में अलौकिकता का आभास देती है।

रीतिकाव्य का प्रभाव इन कवियों में देखने को मिलता है। परन्तु मूलतः ''आलम के कवित्र-सवैयों में कहीं-कहीं रीतिकाव्य परम्परा की झलक भी मिलती है, परन्तु कवि ने मन की उलझन और पीड़ा की अनेक ऐसी अन्तर्शाओं का अंकन किया है जिनमें मौलिकता दिखाई देती है। अनुभूति की तीव्रता ने आलम की शैली को मार्मिक एवं वैदग्ध्यपूर्ण बना दिया है। निराशा, पीड़ा, अवसाद, अतृप्ति आदि की अभिव्यंजना में, कवि आलम पर फारसी अभिव्यक्ति का प्रभाव परिलक्षित होता है।''[6] यह स्वाभाविक ही है क्योंकि दरबारी वातावरण में इनका आना-जाना लगा रहता था। दरबारी काव्य रूचि से ये अवगत थे। प्रेम और निकाह ने इनको हिंदू से मुस्लिम बनाया तो मुस्लिम रूचि और संस्कृति इनके जीवन और काव्य का अंग बननी ही थी।

आलम का चरित्र देखते है तो हम पाते हैं कि ब्राह्मण होने के बाद भी रंगरेज़न से प्रेम किया तथा विवाह न करके निकाह किया। यहां से परिलक्षित होता है कि यह राजनीतिक प्रभाव था, इससे स्पष्ट होता है इस प्रकार के विवाह और धर्म परिवर्तन राजनीतिक प्रभाव के परिणाम थे। क्योंकि, ''मध्यकालीन धार्मिक संस्कारों और कर्मकाण्डों की जकड़न से भारतीय समाज का दम घुटना एक स्वाभाविक बात थी। अतः इसमें मुक्ति पाने के लिए किए गए संघर्षकाल सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति भाषा-काव्य के माध्यम से हुई।''[7] यह संघर्ष और सामाजिक चेतना रीतिमुक्त काव्य में आद्योपांत है।

रीतिकालीन अन्य कवियों की भांति रीतिमुक्त कवियों की भाषा भी ब्रजभाषा है। पर, इनकी भाषा में आंतरिक भिन्नताएं हैं। नवीन भाव भंगिमा की अभिव्यक्ति के लिए ब्रजभाषा के आंतरिक ढाचे को नवीनता व ताजगी प्रदान की और कृत्रिमता एवं रूढ़िता से बचाया है क्योंकि "भावों की जो सूक्ष्म अंतर्दशाएं कवि की

अनुभूत है और रूप आदि के विषय में विलक्षण चिंतन उसे प्राप्त है, उसकी अभिव्यक्ति साहित्य में प्रचलित भाषा से नहीं हो सकती थी।''[8] इनकी भाषा में उत्तम भाषा घनानंद की है। जिनकी भाषा की प्रशंसा करते हुए रामचन्द्र शुक्ल कहते हैं कि ''प्रेम-मार्ग का एक ऐसा प्रवीण और धीर पथिक तथा जबाँदानी का ऐसा दावा रखनेवाला ब्रजभाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।''[9] इस बात को और स्पष्ट करते हुए शुक्ल जी आगे कहते हैं कि ''यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि भाषा पर जैसा अचूक अधिकार इनका था वैसा और किसी कवि का नहीं। भाषा मानो इनके हृदय के साथ जुड़कर ऐसी वशवर्तिनी हो गई थी कि ये उसे अपनी अनूठी भावभंगी के साथ-साथ जिस रूप में चाहते थे उस रूप में मोड़ सकते थे।''[10] यह कबीर का आभास देता है क्योंकि कबीर का भाषा पर ऐसा ही अधिकार था। विचारणीय यह है कि आलम, बोधा, ठाकुर, घनानंद और द्विजदेव मुख्यतः ब्रजभाषा प्रदेश के नहीं है। फिर भी इन्होंने नई भाव भंगिमा के लिए नवीन भाषा क्यों नहीं चुनी? इसके संदर्भ में डॉ. महेन्द्र प्रताप सिंह ने कहा है कि ''मुगलों के राजनैतिक वर्चस्व के साथ-साथ उत्तर भारत की भाषाओं पर मुगल साम्राज्य के केन्द्रीय क्षेत्र की जनभाषा (ब्रजभाषा) का साम्राज्य भी समानान्तर रूप से फैलता रहा है। 'आगरा', 'सीकरी' और 'मथुरा' के आस-पास बोली जाने वाली ब्रजभाषा को साहित्य-भाषा के रूप में इस युग में विशेष रूप से मान्यता मिली है।''[11] एवं कृष्णभक्त कवियों ने इसको निखारा है जो प्रेम और भक्ति के अनुकूल भाषा थी। इस सहज सरल भाषा को स्वीकार करने में रीतिमुक्त कवियों को कोई संकोच नहीं था।

रीतिमुक्त कवियों ने प्रबंध काव्य की अपेक्षा पुस्तक शैली का ही प्रयोग किया है। क्योंकि ''इनमें प्रबन्ध काव्य लिखने की प्रवृत्ति परिलक्षित नहीं होती। इनकी मुक्तक शैली में छन्दोबद्ध पदावली मिलती है। कृष्ण-काव्य अथवा राम रसिक-काव्य की भांति रागों और लोकगीतों की शैली को नहीं ग्रहण किया गया है।''[12]

आदिकालीन और भक्तिकालीन कवियों को 'समस्त छन्द-रूप उसे किसी न किसी पूर्ववर्ती परम्परा से प्राप्त हुए थे।''[13] लेकिन रीतिकालीन कवियों के "विविधता भरे कवित्त और सवैया छन्दों की शोधसृष्टि, भाषा साहित्य की मौलिक एवं सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है।''[14] अतः रीतिमुक्त कवियों के द्वारा ''कवित्त और सवैया छन्दों के प्रयोग से श्रृंगार रस की अभिव्यंजना की गई है।''[15] ऐसा नहीं है कि इन्हें अन्य छंदों का ज्ञान नहीं था। बल्कि रीतिकाल में ''लिखे गए पिंगल-ग्रंथों के आधार पर कहा जा सकता है कि रीतिकाल के भाषा-कवि हजारों प्रकार के छंदों का ज्ञान रखते थे।''[16] फिर भी इन छंदों का उपयोग इसलिए किया क्योंकि ''युग-विशेष की भाव एवं संगीत चेतना का संपूर्ण व्यक्तित्व उसके छंद रूप से ही गठित हुआ करता है।''[17] और ''कवित्त तो श्रृंगार और वीर दोनों रसों के लिए समान रूप से उपयुक्त माना गया था। वास्तव में पढ़ने के ढंग में थोड़ा विभेद कर देने से उसमें दोनों के अनुकूल नादसौंदर्य पाया जाता है। सवैया, श्रृंगार और करूण इन दो कोमल रसों के बहुत उपयुक्त होता है।"[18] रीतिमुक्त काव्य में संगीत और काव्य एकाकार हैं इस एकाकार की उपलब्धि इनके छंद-विधान के कारण संभव हो पायी है। इसीलिए हजारों छंदों के अभ्यस्थ होने के बावजूद जातीय छंदों को चुना।

रीतिकाल की कोई भी धारा हो उसमें रस की दृष्टि से श्रृंगार रस का स्थान सर्वोपरि है। इस युग में श्रृंगार रस रसराज की उपाधि ग्रहण करता है। श्रृंगार रस की अधिकता के कारण रामचन्द्र शुक्ल ने कहा था कि ''श्रृंगार और वीर इन्हीं दो रसों की कविता इस काल में हुई। प्रधानता श्रृंगार की ही रही। इससे इस काल को रस के विचार से कोई श्रृंगारकाल कहे तो कह सकता है।''[19]

जिसके कारण विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी ने इस काल को श्रृंगार काल की संज्ञा दी थी। पर सवाल ये है कि क्या रीतिमुक्त कवि का श्रृंगार रस अन्य रीतिकालीन कवियों की भांति समान था? उत्तर स्पष्ट है नहीं। क्योंकि, रीतिमुक्त कवियों ने श्रृंगार रस के ''विरह पक्ष के चित्रण में मर्मस्पर्शी व्यंजना की है। इनकी वेदना इतनी तीव्र है कि सहने के सिवाय और कोई रास्ता भी नहीं है। कवि बोधा विरह की इस तीव्रता में धैर्य का परिचय प्रस्तुत करते हैं-

कबहूँ मिलिनो कबहूँ मिलिबो, यह धीरज ही मैं धरैबो करै।
उर से कढि आवै गरे तै फिरै, मन की मन ही में सिरैबौ करै॥
कवि बोधा न चाँड सरी कबहूँ, नित ही हरवा सौं हिरैबो करै॥
सहते ही बनै कहते न बनै, मन ही मन पीर पिरैबौ करे॥''[20]

जबकि अन्य रीतिकालीन कवियों ने श्रृंगार रस को ''अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया था। इसका कारण जनता की रूचि नहीं, आश्रयदाता, राजा-महाराजाओं की रूचि थी जिनके लिए कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।''[21] *लेकिन रीतिमुक्त कवि दरबार से प्रभावित होते हुए भी मर्यादित थे।*

भाव, रस अलंकार, काव्य रूप और छंद की दृष्टि से रीतिमुक्त कवि विलक्षण थे। इस विलक्षणता का कारण इनके काव्य का प्रेरक तत्व एवं काव्य प्रयोजन था। इनके काव्य का प्रेरक तत्व प्रेम की पीर थी। उस पीर की काव्यमयी अभिव्यक्ति इनका प्रलोभन जिसे सटीक शब्दों में घनानंद ने कहा है कि-

लोग हैं लागि कवित्त बनावत।
मोहि तो मैरे कवित्त बनावत।''[22]

निष्कर्षत: कह सकते हैं कि रीति का स्वीकार, आवश्यकतानुसार, त्याग, स्वच्छंदता और प्रभाव रीतिमुक्त कवियों में विद्यमान है। इसलिए बच्चन सिंह का कहना सही है कि ''घन आनंद, ठाकुर, बोधा आदि रीति से सर्वथा मुक्त नहीं है। उनमें रीतितत्व है, पर उसकी बद्धता नहीं है।''[23] *इसलिए बच्चन सिंह ने रीतिमुक्त को 'मुक्तरीति' कहा है। क्योंकि उनका मानना है कि ''इस नाम से नैरंतर्य भी बना रहता है और उसका बदलाव भी। रीति से मुक्त होने के लिए जिसने जितना अधिक संघर्ष किया है उसकी संवेदना उतनी ही घनीभूत हो पायी है।''*[24] *यह संघर्ष इस धारा के प्रतिनिधि कवि घनानंद के काव्य में देखने को मिलता है।*

संदर्भ:-

1. *हिन्दी साहित्य का इतिहास, संपादक डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल, मयूर पेपरबैक्स, नोएड, उत्तर प्रदेश, तेतालीसवा एवं चवालीसवा पुनर्मुद्रण 2013, पृ. 332*
2. *हिन्दी साहित्य का इतिहास, वर्मा एवं गुप्त, मंथन पब्लिकेशन्स, रोहतक, हरियाणा, प्रथम संस्करण 1982, पृ. 304*
3. *वही, पृ. 304*
4. *वही, पृ. 304-305*
5. *वही, पृ. 306*
6. *वही, पृ. 307*
7. *रीतिकालीन हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक व्याख्या, डॉ. महेन्द्र प्रताप सिंह, श्रीपटल प्रकाशन, कैलास कॉलोनी, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 1977, पृ. 18*
8. *हिन्दी साहित्य का इतिहास, संपादक डॉ. नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल, मयूर पेपरबैक्स, नोएड, उत्तर प्रदेश, तेतालीसवा एवं चवालीसवा पुनर्मुद्रण 2013, पृ. 335*
9. *हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पाँचवाँ संस्करण 1949, पृ. 337*
10. *वही, पृ. 339*
11. *रीतिकालीन हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक व्याख्या, डॉ. महेन्द्र प्रताप सिंह, श्रीपटल प्रकाशन, कैलास कॉलोनी, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 1977, पृ. 29*
12. *हिन्दी साहित्य का इतिहास, वर्मा एवं गुप्त, मंथन पब्लिकेशन्स, रोहतक, हरियाणा, प्रथम संस्करण 1982, पृ. 310*

13. रीतिकालीन हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक व्याख्या, डॉ. महेन्द्र प्रताप सिंह, श्रीपटल प्रकाशन, कैलास कॉलोनी, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 1977, पृ. 54
14. वही, पृ. 54
15. हिन्दी साहित्य का इतिहास, वर्मा एवं गुप्त, मंथन पब्लिकेशन्स, रोहतक, हरियाणा, प्रथम संस्करण 1982, पृ. 310
16. रीतिकालीन हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक व्याख्या, डॉ. महेन्द्र प्रताप सिंह, श्रीपटल प्रकाशन, कैलास कॉलोनी, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष 1977, पृ. 55
17. वही, पृ. 55
18. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पाँचवाँ संस्करण 1949, पृ. 241
19. वही, पृ. 241
20. हिन्दी साहित्य का इतिहास, वर्मा एवं गुप्त, मंथन पब्लिकेशन्स, रोहतक, हरियाणा, प्रथम संस्करण 1982, पृ. 310
21. हिन्दी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, पाँचवाँ संस्करण 1949, पृ. 241
22. हिन्दी साहित्य का इतिहास, वर्मा एवं गुप्त, मंथन पब्लिकेशन्स, रोहतक, हरियाणा, प्रथम संस्करण 1982, पृ. 305
23. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, जगतपुरी, दिल्ली, बारहवाँ संस्करण, जनवरी, 2021, भूमिका, पृ. 9
24. वही, पृ. 9

***